International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 5.414 Volume 5, Issue 5, May 2018
Website- www.aarf.asia, **Email** : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

विदेशी क्रांतिकारियों के साथ आचार्य थिरूमल के सम्बंध

[1] डॉ विक्रम सिँह,
सह – प्राध्यापक, अध्यक्ष, इतिहास विभाग
वैश्यकॉलेज, भिवानी – हरियाणा
[2] किरण बाला,
शोध विध्यार्थि, सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बडी झुनझुनू, राजस्थान

इस शोधपत्र में विदेशी क्रां तिकारियों के साथ आचार्य थिरूमल के सम्बं धों के वर्णन का प्रयास किया गया है।लन्दन में स्थित इण्डिया हाउस में कर्जन वायली की हत्या के बाद**क्रांतिकारी**बिखरने लगे क्योंकि ब्रिटिश पुलिस द्वारा भारतीय क्रांतिकारियों की गतिविधियों और उनके ठिकानों पर कड़ी निगरानी रखी जाने लगी। उनके किन से सम्बन्ध थे आदि के प्रमाण जुटाने में लग गई। क्रांतिकारियों ने अब यह अच्छी तरह से जान लिया था कि लंदन उनके लिए भविष्य में सुरक्षित स्थान नहीं रह सकेगा। स्कॉटलैंड यार्ड द्वारा उनका लगातार पीछा किया जाना यह दर्शाता है कि ब्रिटिश पुलिस उन पर दोषारोपण करके लंदन से उन्हें भगाना चाहती थी। जहाँ भी वे जाते थे उनका हर तरफ पीछा किया जाता था जो उन्हें न तो ठीक और न ही सुरक्षित लगा। लंदन छोड़ने के अतिरिक्त अब उनके पास अन्य कोई उपाय नहीं था। उनका विचार था कि ऐसे देश में जाया जाये जहाँ पर पुनः अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों को जारी रख सके। वी॰वी॰एस॰ अय्यर, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, एस॰आर॰ राणा, हरदयाल आदि ने फ्रांस की राजधानी पेरिस में चले गये। मैडम कामा उनसे पहले मई 1909 में वहाँ जा चुकी थी। इन सभी के पुनः मिलने से एक सशक्त ग्रुप लंदन की तरह बनने में देर न लगी।

पेरिस से 'वन्दे मातरम्' नाम का समाचार–पत्र का मैडम कामा ने प्रकाशन शुरू किया। एक कारण यह था कि 'इण्डियन सोश्योलॉजिस्ट' समाचार–पत्र की जो आवाज पहले थी, अब उसमें बदलाव होने के कारण कुछ उदारवादी हो चुकी थी। इस तरह की उदारवादी विचारधारा को किसी ने भी पसन्द नहीं किया। एक कारण यह भी हो सकता है कि उसी तरह की आवाज के द्वारा क्रांतिकारी युवकों में साहस को उसी तरह कायम रखने की भी जरूरत थी।[1]

श्यामजी कृष्ण वर्मा ने कर्जन वायली की हत्या को ठीक नहीं ठहराया। अगर ऐसी किसी अंग्रेज अधिकारी की हत्या भारत में होती तो गलत नहीं था, लेकिन इंग्लैंड में उपर्युक्त नहीं समझा गया। स्थिति ऐसी हो गई कि उनका पत्र अल्प समय के बाद बंद भी हो गया था। इस प्रकार पेरिस से 'वन्दे–मातरम्' को प्रारम्भ करना जरूरी समझा। इसके नाम के चयन से ही दिलो–दिमाग एकदम नये संचार की भावना को दर्शाता है। वे अपनी जिम्मेदारी को काफी अच्छी तरह से समझते थे। हरदयाल

[1] *होम (डिपार्टमेंट) पॉलिटिक्ल ए,* अगस्त 1913, सं॰ 1–3

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

और आचार्य ने मैडम कामा के इस पत्र के प्रकाशन में काफी मदद की। इन भारतीय क्रांतिकारियों ने उन्हीं लाईनों पर काम किया जैसे श्यामजी कृष्णवर्मा ने 1905 में प्रेस, प्लेटफार्म को लंदन में स्थापित किया था।[2]

मैडम कामा ने इन भारतीयों की मदद से दोनों ही संगठन जल्दी से पेरिस में स्थापित किये ताकि उनकी गतिविधियों में ठहराव न आने पाये। ब्रिटिश गुप्तचर विभाग के डायरेक्टर सी॰जे॰ स्टेवंशन मूर ने अपनी रिपोर्ट में इसे स्वीकार ही नहीं किया बल्कि अपनी टिप्पणी में स्पष्ट लिखाः "मैडम कामा श्यामजी कृष्णवर्मा से ज्यादा व्यवहारिक और सक्रिय क्रांतिकारी है जो शान के साथ अपनी गतिविधियों को संचालित करती है।"[3]

यहाँ पर यह बताना जरूरी होगा कि उस समय पेरिस का राजनीतिक वातावरण कैसा था और किस तरह की वैचारिकता यहाँ के राजनीतिक केन्द्रों पर हावी थी। फ्रांस की सामन्तवादी और राजतंत्र की समाप्ति कई क्रांतियों ने कर दी थी और जनता की आवाज सभी तरह की संस्थाओं पर हावी हो चुकी थी। नवजागरण में जो आवाज दबी सी लग रही थी उनको क्रांतियों ने बुलन्द कर दिया और पेरिस एक नये शहर के रूप में उदय हुआ जहाँ पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृ–भावना के नारों ने एक नया राजनीतिक वातावरण स्थापित किया। इनसे जनभावना को अत्यन्त सुरक्षित माना गया था। पाश्चात्य देशों का वातावरण काफी सौहार्दपूर्ण था, जिसके कारण अनेक देशों के क्रांतिकारी यहाँ पर मनचाही गतिविधियों को अंजाम दे सकते थे। सबसे बड़ा परिवर्तन यहाँ पर समाजवादी गतिविधियों का प्रारम्भ होना था। यहाँ के समाजवादी अन्य देशों के क्रांतिकारियों को अपनी सहायता एवं सहयोग दे रहे थे। साम्राज्यवादी शक्तियों को सभी देशों से परास्त करने का उनका विचार था। वे चाहते थे कि समस्त विश्व में इस तरह का एक ऐसा आदर्श वातावरण बने जिससे कि विश्व के पटल से शोषणकारी एवं तानाशाही ताकतें समाप्त हो सकें। लम्बे समय तक इस तरह की शक्तियों ने मानव के सर्वांगीण विकास को कड़ाई के साथ रोक रखा था। इतना ही नहीं बल्कि संसार ने अपने आपको संगठित किया और बारी–बारी से यूरोप के बड़े शहरों में सम्मेलन करने लगे। यूरोप अब बदलाव की तरफ जा रहा था। राजनीतिक क्षेत्रों में नई व्यवस्था की स्थापना को महत्वपूर्ण माना जाने लगा।[4]

श्यामजी कृष्ण वर्मा, मैडम कामा, राणा, आचार्य, चट्टोपाध्याय आदि के प्रस्थान के बाद ब्रिटेन में क्रांतिकारी गतिविधियों का मुखिया विनायक दामोदर सावरकर बना। उस पर ब्रिटिश पुलिस लगातार ध्यान देखती रही। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा लिखी गई पुस्तक 'इण्डियाज वार ऑफ इंडिपैंडन्स' ने ब्रिटिश में व्यापक स्तर पर हलचल मचा दी थी।[5] ब्रिटिश सरकार ने उन पर ताज के विरूद्ध षड्यन्त्र करने का आरोप लगाया गया। अतः सरकार की आँख की किरकरी बन चुका था और उसे एकदम गिरफ्तार कर लिया गया। जो उस समय अन्य क्रान्तिकारी बचे थे उनमें वी॰वी॰एस॰ अय्यर और आचार्य थिरूमलाचारी ही थे जो सावरकर के साथ लंदन में मिलकर ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों में संलिप्त थे, ने अन्ततः लंदन छोड़ने का तुरन्त निर्णय लिया। ऐसा करना अत्यंत जरूरी था क्योंकि उनको कभी भी गिरफ्तार किया जा सकता था। उनके सामने बस एक ही विकल्प था कि अन्य क्रांतिकारियों की तरह वे भी लंदन छोड़कर पेरिस चले जाये। उन सभी का यह मानना था कि केवल पेरिस ही उनके लिए

[2] *उपर्युक्त*

[3] *उपर्युक्त,* जनवरी 1911, सं॰ 52–64

[4] *होम (डिपार्टमेंट) पॉलिटिक्ल ए,* अगस्त 1913, सं॰ 1–3

[5] कर, *वही,* पृ॰ 177–79

उचित स्थान हो सकता था। मैडम कामा, सरदारसिंहजी रेवाभाई राणा आदि ने सही समय पर निर्णय लिया और वहाँ जाकर अपनी गतिविधियों का केन्द्र स्थापित किया।[6]

आचार्य को इस बात का एहसास हो गया था कि मैडम कामा के पास पेरिस में ही जाकर कार्य करना उचित होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि अब पेरिस लंदन की अपेक्षा अधिक सुरक्षित था। हर तरह की गतिविधियों के लिए वह शहर सबसे उपयुक्त स्थान भी था। वहाँ पर भारतीयों की संख्या काफी कम थी और 'वन्देमातरम्' के लिए सम्पादन मंडल में उनकी ज्यादा जरूरत थी। मैडम कामा ने उनको सहयोग करने के लिए अपने पास रख लिया। इस समाचार–पत्र की ख्याति जल्दी ही स्थापित हो गई और अनेक देशों के क्रांतिकारियों से भी सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुए क्योंकि उन सभी के ध्येय समान तरह के ही थे।[7] पेरिस से प्रकाशित 'वन्देमातरम्' की प्रतियाँ भारतीय क्रांतिकारियों को बराबर मिलने लगी। विदेशों में रहे क्रांतिकारियों की गतिविधियों की हर प्रकार की जानकारी उपलब्ध होने लगी। जल्दी ही इस समाचार–पत्र की काफी प्रतियाँ वितरित होने लगी और उनके लिए प्रेरणा का स्रोत बना। दक्षिण भारत में तो इसका इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि कई स्थानों पर क्रांतिकारियों ने अंग्रेज अफसरों को निशाना बनाया और कई स्थानों पर विस्फोटक कार्यवाहियाँ की गई। इससे पत्र की लोकप्रियता का पता चलता है।[8]

भारतीय क्रांतिकारियों ने पेरिस में अपनी गतिविधियों को केवल साहित्यिक विद्या तक ही सीमित रखा। इस प्रकार के क्रांतिकारी साहित्य के प्रकाशन को ही वे महत्व देने लगे। व्यापक स्तर पर उसको वे क्रांतिकारियों के पास गुप्त रूप से भेजते रहे। पिस्तौल चलाने, बम बनाने आदि का भी प्रशिक्षण लगातार चलता रहा ताकि भारत में आकर वे अन्य युवकों को प्रशिक्षित कर सकें। रूसी क्रांतिकारी पेरिस में काफी सक्रिय थे, जिन्होंने अन्य देशों के क्रांतिकारियों के हरसम्भव सहायता दी। ब्लादिमीर बुर्तेजैफ का नाम प्रमुख तौर से लिया जा सकता है जिसे रूसी सरकार ने देश से बाहर कर दिया था। उसके भारतीयों के साथ ही नहीं अपितु फ्रांसिसी समाजवादियों के साथ भी अच्छे सम्बन्ध थे।[9] वैश फिग्नर एक अन्य रूसी क्रांतिकारी स्त्री भी थी जो भारतीय क्रांतिकारियों की हरसंभव सहायता कर रही थी। वह बम और विस्फोटक सामग्री के तैयार करने के साथ–साथ पिस्तौल चलाने में भी क्रांतिकारियों की सहायता कर रही थी। इसी बाह्य सहायता के कारण भारत में क्रांतिकारी साहित्य के अतिरिक्त विस्फोटक सामग्री भी देश में आयातित होती रही जिसका प्रयोग अनेक षड्यंत्रकारी मामलों में होता रहा।[10]

सभी भारतीय क्रांतिकारी मानते थे कि उनकी सभी तरह की समस्याओं और दुःख–दर्द से विदेशी काफी अनजान थे। समस्त विश्व को भारत में हो रही अमानवीय गतिविधियों को बताया जाये ताकि इंग्लैंड पर बराबर बनाया जा सके। वे चाहते थे कि जैसे यूरोप के राष्ट्र पूरी तरह से आत्म–सम्मान के साथ जन–भावनाओं और आकांक्षाओं को ध्यान में रखकर उनकी राष्ट्रीय सरकार कार्यरत थी, उनकी भी ऐसी ही भावना थी कि उनके यहाँ पर भी वैसी व्यवस्था स्थापित हो।[11] अपने

---

[6] *होम (डिपार्टमेंट) पॉलिटिक्ल ए,* अगस्त 1913, सं॰ 1–3

[7] *उपर्युक्त,* जनवरी 1911, सं॰ 52–64

[8] *होम (डिपार्टमेंट) पॉलिटिक्ल ए,* जनवरी 1911, सं॰ 52–64

[9] सरीन, *वही,* पृ॰ 235–38

[10] *मराठा,* अगस्त, 20, 1937

[11] *इण्डियन सोश्योलॉजिस्ट,* अगस्त, 1907

विभिन्न कार्य–क्लापों के द्वारा जैसे लेखों, भाषणों, समाचार–पत्रों और संगठनों के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जनहित–विरोधी नीतियों और दमनात्मकता की कड़े से कड़े शब्दों में आलोचना की। यूरोपियन के दिलों में भारत के प्रति जागरूकता लाना आवश्यक था ताकि वे भी भारतीयों के दुःख–दर्दों को जान सके। यह सब प्लेटफार्म और प्रेस के माध्यम से ही सम्भव था।[12]

विदेशों में रह रहे अनेक देशों के प्रशिक्षित लोगों से भारतीय क्रांतिकारियों को प्रशिक्षण देने का प्रमुख कार्य था ताकि प्रशिक्षित भारत अपने देश में आकर आगे अन्य भारतीय क्रांतिकारियों को उसी तरह का प्रशिक्षण देकर संगठित किया जा सके। आग उनका मुख्य ध्येय ब्रिटिश अधिकारियों को निशाना बनाकर उनमें भय पैदा करना था ताकि वे अपने प्राणों की सुरक्षा हेतु भारत छोड़ने को विवश हो जाये। भारतीय क्रांतिकारियों ने 1907 में पी॰एम॰ बापत, हेमचन्द्र दास और मिर्जा अब्बास को देश में इसीलिए भेजा गया ताकि ये सभी देश के कुछ क्षेत्रों में जा सके।[13] हेमचन्द्र दास को कलकत्ता की जिम्मेदारी दी गई जहाँ पर उसने भारतीय क्रांतिकारियों को पिस्तौल चलाना, बम और अन्य विस्फोट सामग्री तैयार करने का प्रशिक्षण देने लगे। वहाँ पर क्रांतिकारी संगठन अनुशीलन समिति से सम्पर्क स्थापित किया गया ताकि अनेक युवकों को सही जानकारी प्राप्त हो सके। इस प्रकार बंगाल में कई ब्रिटिश अधिकारियों को मौत के घाट उतारा गया और डकैतियाँ भी डाली गई ताकि धन की प्राप्ति हो सके।[14]

पांडुरंग महादेव बापत को बम्बई के क्षेत्रों में भेजा गया ताकि वे बम एवम् अन्य विस्फोटक सामग्री तैयार करने का प्रशिक्षण दे सके। विस्फोटक सामग्री को अंग्रेज अधिकारियों की हत्या के लिए तैयार किया गया। उनका पहला शिकार कोल्हापुर राज्य का राजनीतिक एजेन्ट बना। स्वाभाविक था कि उनकी गतिविधियों की जानकारी अधिकारियों को मिली तो उनके गिरफ्तार करने के लिए पुलिस को आदेश दिये गये। उग्र–राजनीतिज्ञों जैसे बालगंगाधर तिलक, अरविन्दो घोष, लाला लाजपतराय, अजीतसिंह को गिरफ्तार कर देश–निकाला दे दिया। सरकार ने कानूनों में बदलाव करके उनको और भी कड़ाकर दिया गया। नये क्रीमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट, 1908 के द्वारा अधिकारियों को काफी अधिकार मिले जिसके बल पर अनेक नेताओं और क्रांतिकारियों को पकड़कर अदालतों में बिना पेशी के जेलों में डाल दिया गया। इसके साथ–साथ यह भी घोषित किया गया कि बिना सरकार की अनुमति के सार्वजनिक सभाएं करने पर पाबन्दी लगा दी। ऐसी परिस्थितियाँ स्थापित करने के बाद भी सरकार राष्ट्रीय आंदोलन के प्रचार–प्रसार को रोक नहीं सकी।[15]

इसमें कोई संदेह नहीं कि सरकार इस तरह की आक्रामक गतिविधियों से डरने लगी और इन पर अंकुश लगाने के लिए व्यापक स्तर पर गिरफ्तारियों का सिलसिला शुरू हुआ। इसका व्यापक प्रभाव यह हुआ कि अनेक भारतीय क्रांतिकारी युवक सरकार की आक्रामक और दमनात्मक कार्यवाहियों से बचने के लिए पाश्चात्य जगत् की तरफ रूख करने लगे क्योंकि वहाँ पर कई केन्द्रों की स्थापना हो चुकी थी।[16] विदेशों में उपस्थित अनेक देशों के क्रांतिकारियों ने भारतीयों के सहयोग से कुछ केन्द्र, संगठन एवम् जन–संचार माध्यमों के द्वारा काफी कुछ कर चुके थे। आयरलैंड, रूस, तुर्की, मिस्र आदि

---

[12] *उपर्युक्त।*

[13] ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर विभाग ने 1911 में एक रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें विदेशों में रह रहे भारतीय क्रांतिकारियों की गतिविधियों की विस्तृत जानकारियाँ दी थी। *इण्डियन एजिटेटर्स अबरोड* (शिमला, 1911), पृ॰ 57

[14] आचार्य, *वही,* पृ॰ 236–38

[15] *होम (डिपार्टमेंट) पॉलिटिक्ल बी,* मई 1909, सं॰ 30

[16] *mi;qZDrA*

देशों के क्रांतिकारियों ने भारतीयों के साथ तालमेल बनाकर शोषणकारी और साम्राज्यवादी शक्तियों का व्यापक स्तर पर विरोध किया गया। पाश्चात्य देशों में सभी तरह के परिवर्तनों का उन्होंने विश्लेषण किया और समाजवादी शक्तियों का सहयोग लेने के लिए तत्पर हुए। यह काफी बड़ा परिवर्तन तत्कालीन विश्व में हो रहा था।[17]

श्यामजी कृष्णवर्मा, मैडम कामा, आचार्य ने अपने समाचार–पत्रों के द्वारा समाजवादी क्रान्तियों को मानव–हितों के लिए काफी उपयुक्त माना। उनको हर–तरह के सहयोग देने की हिमायत ही नहीं की अपितु उन्हीं के द्वारा मानव–विकास की सम्भावनाओं में भी विश्वास व्यक्त किया। ये वैचारिक परिवर्तन काफी महत्वपूर्ण थे, जिससे जन–कल्याण सम्भव लग रहा था। इस तरह के परिवर्तन की जानकारी भारत में उनके समर्थकों को मिल रही थी। गृह–विभाग की गुप्तचर संस्था ने इस तरह की जानकारियाँ एकत्रित कर एक रिपोर्ट तैयार की जिसमें प्रान्तों की सभी तरह की गतिविधियों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई थी। विदेशों से डाक के द्वारा आयातित पैकटों में क्रांतिकारी साहित्य की जानकारी भी लगी। ऐसे पैकेटों को जब्त कर लिया गया। सरकारी संज्ञान में आने के बाद भी क्रांतिकारी साहित्य का आगमन जारी रहा।[18] सरकारी दस्तावेजों से पता लगता है कि गुप्तचर विभाग के डॉयरेक्टर ने स्वयं इसकी पुष्टि की और लिखा : "हमें भारत में प्रत्येक तरह के षड्यंत्रकारी साहित्य को देखते हुए खुले बाजार में उसे जला देना चाहिए। अनेक बार उनके षड्यन्त्र और गुण के आधार स्तर को देखते हुए हम उनको पकड़ने में कई बार असफल रहे।"[19] इस विभाग के अधिकारियों का तर्क था कि कुछ ऐसे सख्त कदम उठाये जाये जिससे उनकी सभी गतिविधियों पर काबू पाया जा सके। देश की समस्त प्रान्तीय सरकारों ने भी अपनी रिपोर्टों में केन्द्रीय सरकार से अनुरोध किया गया कि सख्त कार्यवाही करने की अति आवश्यकता थी। इसी को ध्यान में रखकर सरकार ने प्रेस अधिनियम में व्यापक संशोधन करके कड़ी कार्यवाहियाँ की गई तब सरकार को कुछ राहत मिली।[20]

जिस तरह से तीन भारतीय क्रांतिकारियों को भारत में भेजा गया था उसी तरह दो अन्य भारतीय आचार्य और सुखसागर दत्त को मोरक्को में वहाँ के क्रांतिकारियों की सहायता हेतु स्पेनिश सरकार के विरूद्ध भेजा गया। उस देश में जाने का कारण यह था कि मोरक्को क्रान्तिकारियों की तरह भारतीय क्रांतिकारियों को भी युद्ध के अनुभव का लाभ मिल सके।

मोरक्को में स्पेशिन सरकार के विरूद्ध वहाँ के क्रांतिकारियों द्वारा गोरिल्ला युद्ध तकनीकी का प्रयोग किया जा रहा था। वहाँ की ऐसी स्थिति का लाभ भारतीय क्रांतिकारी लेने के लिए तत्पर थे। कैसी स्थिति होगी कितनी सफलता प्राप्त होगी आदि की परवाह नहीं थी। विद्यमान परिस्थितियों से अनुभव प्राप्त करने की उनकी अभिलाषा थी। ऐसी ही स्थिति का द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सुभाषचंद्र बोस जैसे क्रांतिकारी नेताओं ने लाभ उठाया। ब्रिटिश को काफी भयभीत कर दिया गया क्योंकि देश के अंदर और बाहर से उसे व्यापक चुनौतियों का सामना करना पड़ा।[21]

मोरक्को की तत्कालीन स्थिति का सही लाभ आचार्य ने उठाया और उपलब्ध प्रशिक्षण सैद्धान्तिक तौर से लिया गया। दूसरी तरफ देश में सरकार ने क्रांतिकारियों की गिरफ्तारियाँ प्रारम्भ

---

[17] *उपर्युक्त।*

[18] *होम (डिपार्टमेंट) पॉलिटिक्ल बी,* अगस्त 1910, सं॰ 96–103

[19] *उपर्युक्त।*

[20] *उपर्युक्त,* अगस्त 1913, सं॰ 1–3

[21] *होम (डिपार्टमेंट) पॉलिटिक्ल ए,* अगस्त 1913, सं॰ 1–3

कर दी और साथ–साथ क्रांतिकारी साहित्य के जब्ती के लिए छापेमारी की जाने लगी। उनके सभी संगठनों को गैर–कानूनी घोषित किया जाने लगा। उनके एवं उनके समर्थित समाचार–पत्रों के प्रकाशन पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये गये। सम्पादकों को कारागारों में डाल दिया गया।[22] विनायक दामोदर सावरकर को जब ब्रिटिश सरकार ने हिरासत में लिया तो इससे उन्हें मायूसी हुई। वर्मा, राणा, मैडम कामा आदि के चले जाने के बाद लंदन में क्रांतिकारी संगठन का वह ही सबसे बड़ा नेता था। वह ही सही मायनों में क्रांतिकारी गतिविधियों को अंजाम दे रहा था। यह एक काफी बड़ा झटका था जिससे उनकी गतिविधियों पर काफी प्रभाव पड़ा।[23]

लंदन के बाद पेरिस एक व्यापक केन्द्र भारतीय क्रांतिकारी गतिविधियों का बना। पेरिस इण्डिया सोसायटी की स्थापना के साथ–साथ 'वंदेमातरम्' का प्रकाशन प्रारम्भ हो चुका था। इस पत्र में अनेक लेख भारत की विभिन्न स्थिति पर प्रकाशित होते थे। सबसे ज्यादा ध्यान राष्ट्रवादी एवं धर्मनिरपेक्ष विषयों पर रहा क्योंकि भारत बहुधर्मी, बहुभाषी एवम् क्षेत्रवादी देश था। अंग्रेज सरकार भारतीय वर्गों में आपसी फूट के द्वारा बांटने का कार्य भी प्रारम्भ कर चुकी थी, ताकि उनकी साम्राज्यवादी भावना के हितों की पूर्ति होती रहे। आचार्य ने 'वंदेमातरम्' में इसी भावना को ध्यान में रखते हुए आह्वान किया और एक तार्किक लेख लिखा जिसमें उन्होंने सिक्खों, राजपूतों, मुसलमानों और मराठों को सैन्य तौर से ब्रिटिश साम्राज्यवाद को बढ़ावा देने में किसी तरह की कोई सहायता नहीं की जाने का आह्वान किया।[24]

आचार्य की तरह सभी भारतीय क्रान्तिकारियों का स्पष्ट रूप से मानना था कि अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की लागू की गई। उनकी चालाक नीति को समझना चाहिए। उन्होंने आगाह करते हुए आगे एक संदेश दिया कि उनका किसी भी तरह का पक्ष नहीं लिया जाये जो देश विरोधी हो। मार्मिक मेरे शब्दों में आगे लिखा : "अगर आप भारत की मुक्ति के लिए मनुष्यत्व नहीं रखते है तो किसी भी प्रकार के कार्य में भाग लेने से दूर रहो जिससे कि भारत माता के गले में दासता की जंजीरे बराबर पड़ी रहें। यह समय और वातावरण अपने आपको संगठित करने का है जिससे कि भारत में आपकी आवाज बुलन्द हो सके।"[25] भारतीय क्रांतिकारी धर्म–निरपेक्षता में अटूट विश्वास करते थे ताकि सभी भारतीय अपने भेदभाव भूला कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध करें; तभी दासता से मुक्ति मिलेगी। मुस्लिम लीग ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से हाथ मिलाकर मुसलमानों को हिन्दुओं के समक्ष खड़ा करके अपने हितों की पूर्ति की। इस तरह की नीति का समस्त राष्ट्रवादियों एवं क्रांतिकारियों ने डटकर विरोध ही नहीं किया बल्कि सरकार परस्त समाचार–पत्रों, सरकारी अधिकारी व संगठनों की आलोचना की क्योंकि इसी नीति के द्वारा उन्होंने विश्वभर में अपनी सत्ता स्थापित की थी।[26]

इसमें कोई संदेह नहीं कि पाश्चात्य–जगत् के समाजवादी और उनके संगठनों के द्वारा ही उनको समर्थन मिल रहा था। वे महाद्वीपीय सम्बन्ध बढ़ाने के लिये हमेशा तत्पर रहे। दूसरा महत्वपूर्ण कार्य युवकों को विस्फोटक सामग्री बनाने और सैन्य प्रशिक्षण दिलवाने में उनको शामिल करना था। स्टटगार्ट (जर्मनी) में 1907 में अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस का वार्षिक सम्मेलन हुआ। दो भारतीय

---

[22] *उपर्युक्त,* अगस्त 1909, सं॰ 120–129

[23] *उपर्युक्त।*

[24] *होम (डिपार्टमेंट) पॉलिटिक्ल ए,* अगस्त 1913, सं॰ 1–3

[25] इस तरह के विचार सरकार परस्त समाचार–पत्र के द्वारा दिया जाना आश्चर्यजनक था।, *दा पायनियर,* (इलाहाबाद), जनवरी, 2, 1907।

[26] *उपर्युक्त।*

मैडम कामा और सरदारसिंह रेवाभाई राणा इस सम्मेलन में पहुँचे लेकिन उनको भारत का प्रतिनिधि मान कर उचित मान–सम्मान नहीं दिया गया। ब्रिटिश समर्थक समाजवादियों ने उनको ब्रिटिश प्रतिनिधि माना। उन्होंने विरोध जताया और भाषण देने के लिए समय की मांग की। बड़ी ही विचित्र बात यह थी कि ब्रिटेन के प्रतिनिधि रेमजे मैक्डॉनल्ड ने उनका विरोध करते हुए कांग्रेस के बहिष्कार तक की धमकी दी। ऐसी स्थिति में उन्हें सदस्य नहीं माना गया लेकिन अधिवेशन में बैठने अवश्य दिया गया।[27] रेमजे का विरोध फ्रांस के प्रसिद्ध समाजवादी नेता जीन जोरेश और इंग्लैंड के एच॰एम॰ हैण्डमैन के प्रयासों की वजह से था। केवल मैडम कामा को भाषण देने और झण्डा फहराने की मूलतः आज्ञा मिल गई। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनको ऐसा अवसर प्राप्त हुआ जिसकी उन्हें काफी जरूरत थी ताकि अपने देश की समस्याओं को इस अंतर्राष्ट्रीय संगठन के सामने प्रस्तुत कर सकें। यहाँ पर यह ध्यान देने की बात है कि ऐसे अवसर का लाभ उठाना कितना उपयुक्त था क्योंकि भारत के मामलों में जो ब्रिटिश अपने तर्क प्रस्तुत करते थे वे एक तरफा तो थे ही लेकिन साथ–2 उनमें किसी भी तरह की सच्चाई नहीं थी।[28]

मैडम कामा ने विश्व के अनेक देशों के प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुए आत्म–विश्वास के साथ कहा, "मैं करोड़ों मूक भारतीयों की तरफ से बोल रही हूँ जो ब्रिटिश शासन की निरंकुशता और बर्बरता का शिकार हो रहे हैं। समाजवाद ही एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सभी को न्याय मिल सकता है। समाजवादी भाईयों और बहनों, (आप) न्याय का साथ दो और प्रत्येक वर्ष होने वाली उस कांग्रेस में भारत के प्रश्न पर विचार करना चाहिए। रूस में घटित हुई घटना से तो यूरोप के लोग पूरी तरह परिचित हैं। क्या आपने हमारे दुःख–दर्दों को जानने का प्रयास नहीं करेंगे।"[29] रूस में हुई जन–क्रांति से वह काफी प्रभावित थी जिसके द्वारा उस देश में समाजवाद का उदय सम्भव हुआ। इसमें कोई संदेह नहीं कि रूस में काफी लम्बे समय से जन–मानस का शोषण होता रहा। जब वहाँ पर क्रांति सफल हुई तो एक अलग तरह की राज–व्यवस्था स्थापित हुई। उन्होंने ब्रिटिश शासन की आलोचना की क्योंकि इससे देश को व्यापक क्षति हुई। उनका मानना था कि इस तरह की शासन व्यवस्था से छुटकारा दिलवाये और विश्व के समाजवादियों को उनकी सहायता करनी चाहिए।[30]

विश्व समाजवादी कांग्रेस के अधिवेशन से भारतीय क्रांतिकारी काफी प्रभावित एवम् प्रेरित हुए। वे चाहते थे कि जिस प्रकार से यह संगठन अपने वार्षिक सम्मेलन करता था उसी तरह भारतीय क्रांतिकारी अन्य देशों के क्रांतिकारियों से मिलकर वे भी ऐसा ही करें। आचार्य, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय आदि भारतीय क्रांतिकारी आपसी तालमेल और सहयोग के द्वारा एक निश्चित नीति बनाकर इस तरह की कार्यवाही कर सकते थे।[31] भारतीय क्रांतिकारियों ने मिस्र के राष्ट्रवादियों के साथ मिलकर सितम्बर 1910 में एक संयुक्त सम्मेलन करने का निर्णय लिया लेकिन फ्रांस की सरकार ने ऐसा करने से मना कर दिया। सम्मेलन नहीं हो सका क्योंकि ब्रिटेन का भी दबाव था। सितम्बर 1910 में उन्होंने ब्रुसेल्स में सम्मेलन किया। इसमें सभी प्रतिनिधियों ने अपने भाषणों में साम्राज्यवादी शक्तियों का विरोध किया। इंग्लैंड के प्रसिद्ध समाजवादी नेता जेम्स कैर हार्डी ने इस अधिवेशन की अध्यक्षता की थी।[32]

---

[27] *दा पायनियर,* (इलाहाबाद), जनवरी, 2, 1907।

[28] *उपर्युक्त।*

[29] *इंडियन सोश्योलॉजिस्ट,* लंदन, अगस्त 1907

[30] *इंडियन सोश्योलॉजिस्ट,* लंदन, अगस्त 1907

[31] *फॉरेन (डिपार्टमेंट), एक्सटर्नल बी, कांफिडेंसियल,* 1909, सं॰ 13

[32] *mi;qZDrA*

इस सम्मेलन में अनेक देशों के राष्ट्रवादियों ने भाग लिया और सभी प्रतिनिधियों ने तार्किकता के साथ अपने विचार प्रस्तुत किये। ब्रिटिश सरकार की आलोचना व्यापक स्तर पर की गई। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि आचार्य, मैडम कामा, चट्टोपाध्याय आदि ने ब्रिटिश शासन व्यवस्था के द्वारा विभिन्न देशों की दुर्दशा का विस्तार से वर्णन किया। सभी का केन्द्र– बिन्दु संचार–व्यवस्था थी जिसके माध्यम से साम्राज्यवाद के विश्व–व्यापी प्रभाव को पाश्चात्य देश जान सके। विश्व के उपस्थित क्रांतिकारी मैडम कामा के इस विचार से सहमत थे कि बम्ब संस्कृति के द्वारा ही 'साम्राज्यवाद और शोषणकारी शक्तियों से मुक्ति' सम्भव होगी।[33] अन्य देशों के क्रांतिकारियों ने भारतीय क्रांतिकारियों को आगे कार्य करते रहने की सलाह दी। संगठन को व्यापक स्तर पर विकसित करने के लिए साहित्य के प्रकाशन का प्रशिक्षण अतिआवश्यक था क्योंकि संगठन के लिए एक छापेखाने की भी आवश्यकता होती है। आचार्य को रोटरडम में प्रकाशन का प्रशिक्षण लेने के लिए भेजा ताकि वह छापेखाने एवं नक्काशी आदि की ट्रेनिंग प्राप्त ले सके। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रशिक्षण लेना आवश्यक था ताकि क्रांतिकारी साहित्य के प्रकाशन में निपुणता प्राप्त करके आत्मनिर्भर बन सके। अन्य देशों के लोगों पर इस तरह से लम्बे समय तक निर्भर रहना तो उपयुक्त नहीं था और न ही सस्ता था बल्कि काफी महंगा साबित हो रहा था।[34] इस तरह का लिया गया निर्णय वास्तव में सराहनीय और समयानुसार भी था।

रोटरडम से प्रशिक्षण लेकर आचार्य को बर्लिन भेजा गया ताकि जर्मन भी भारतीय समस्याओं को जान सके और उनका सहयोग लिया जा सके। एक अन्य निर्णय यह लिया गया कि वी॰वी॰एस॰ अय्यर को क्रांतिकारी गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए देश में भेजा गया। उसी के कारण दक्षिण भारत में क्रांतिकारी गतिविधियाँ व्यापक स्तर पर बढ़ती गई। आचार्य के बर्लिन में आने के बाद वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने उससे प्रेरित होकर 'तलवार' नामक समाचार–पत्र शुरू किया।[35]

मैडम कामा की देखरेख में इसका संचालन होता रहा। आचार्य को पत्रकारिता के साथ–साथ प्रकाशन का भी अनुभव था। अतः उसके सहयोग के द्वारा यह पत्र बराबर चलता रहा। 'वंदेमातरम्' पत्र में भी उसका सहयोग सराहनीय था क्योंकि उसके प्रकाशन में और वितरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया था। आचार्य अपनी बुद्धिमता और कौशलता के साथ वह लोकप्रिय बन चुका था। दोनों ही समाचार–पत्रों 'वंदेमातरम्' और 'तलवार' के प्रकाशन का भार उसके कंधों पर आ चुका था क्योंकि पाश्चात्य जगत् में बिना संचार माध्यमों के किसी भी तरह की क्रांतिकारी गतिविधियाँ संभव नहीं थी।[36]

आचार्य हमेशा भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन को काफी सहयोग देते रहे लेकिन सबसे महत्वपूर्ण योगदान क्रांतिकारी साहित्य को अपने देश के युवकों को भेजने में रहा। लंदन के बाद क्रांतिकारी साहित्य एवं समाचार–पत्रों का प्रकाशन पेरिस और बर्लिन से ही करते थे। उन्होंने प्रकाशन के प्रशिक्षण में निपुणता प्राप्त कर ली थी। 'वंदेमातरम्' और 'तलवार' में ज्यादातर ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर ही जोर होता था, क्योंकि इस विद्या ने संसार के अनेक देशों में आक्रात्मकता को ही नहीं अपनाया गया अपितु शोषणकारी नीतियों पर भी चलते रहे जिनकी कड़े शब्दों में आलोचना करने में भी वे पीछे नहीं रहे क्योंकि ऐसी स्थिति के कारण ही सभी शासित देश दरिद्र होते चले गये।[37]

---

[33] *होम (डिपार्टमेंट), पॉलिटिक्ल ए,* अगस्त 1913, सं॰ 1–3

[34] *उपर्युक्त।*

[35] कर, *वही,* पृ॰ 117

[36] *उपर्युक्त।*

[37] *होम (डिपार्टमेंट), पॉलिटिक्ल ए,* अगस्त 1913, सं॰ 1–3

'वंदेमातरम्' और 'तलवार' समाचार–पत्रों को अन्य देश के क्रांतिकारी भी पढ़ते थे। भारतीयों के अतिरिक्त अन्य देशों के क्रांतिकारी भी अनेक लेख विभिन्न–विभिन्न विषयों पर लिखकर इनको भेजते रहे थे। इससे समस्त संसार के आंदोलन का ज्ञान भी प्राप्त होता रहता था और पहले कैसे कई देशों ने अपने राष्ट्र निर्माण योगदान दिया। जर्मनी, इटली जैसे देश भी पहले राष्ट्रीय भावना के अभाव के कारण एकीकरण संभव नहीं हो पाया। विदेशियों के द्वारा उनके क्षेत्र पर कब्जा बनाये रखा। लम्बे समय तक संघर्ष करने के बाद ही राष्ट्रीयता की भावना की स्थापना सम्भव हुई। इन देशों के राष्ट्र बनने के बाद अन्य देशों को उनसे प्रेरणा मिलती रही।[38]

आचार्य, राणा, वर्मा, मैडम कामा आदि के बाद लंदन में जो घटनाचक्र का कर्म रहा वह ठीक नहीं था। विनायक दामोदर सावरकर पर ब्रिटिश गुप्तचर विभाग की बराबर निगाह बनी रही और अंततः उसे गिरफ्तार कर लिया गया। इस कार्यवाही से लंदन में भारतीय क्रांतिकारी गतिविधियों को धक्का लगा। उन पर ब्रिटिश सरकार ने अनेक आरोप लगा कर केस चलाया।[39] इतना ही नहीं बल्कि उसके केस को हेग में अंतर्राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल तक ले जाया गया ताकि सभी इल्जाम गलत साबित हो सके। ब्रिटिश सरकार सावरकर को केसों में फंसाकर फांसी की सजा देने का मन बचा चुकी थी लेकिन एक अंतर्राष्ट्रीय विषय बनने के कारण ब्रिटिश सरकार के मनसूबों पर पानी फिर गया। ब्रिटिश सरकार को अब यह डर सताने लगा था कि कहीं विश्व जनमत का उनको समर्थन अगर मिल गया तो उनकी साम्राज्यवादी व्यवस्था को बड़ा धक्का लगेगा। अतः ब्रिटेन ने ऐसी स्थिति में कोई भी खतरा लेना नहीं चाहता था। यही वजह थी कि सावरकर बच निकला।[40]

क्रांतिकारी आंदोलन की एक अन्य महत्वपूर्ण देन सैन्य प्रशिक्षण थी जिसके अंतर्गत वे विदेशी क्रांतिकारियों के सम्पर्क में बराबर बने रहे। अन्य देशों से गुरिल्ला–युद्ध का प्रशिक्षण लेकर देश में आकर आगे युवकों को आगे प्रशिक्षण देना था ताकि उनके ध्येयों की पूर्ति सम्भव हो सके। पेरिस का ग्रुप भारतीय क्रांतिकारी केन्द्रों के साथ समन्वय स्थापित कर चुका था। बर्लिन में भी इसी तरह के केन्द्र के विकास के लिए चम्पाकरमण पिल्लै की सहायता के लिए वीरेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय को भेजा गया। अनेक केन्द्रों की स्थापना से प्रशिक्षण का कार्य भली–भांति चलाना सम्भव था।[41]

भारतीय क्रांतिकारी ने गहनता के साथ विचार–विमर्श के बाद मूलतः दो विषयों पर ध्यान देने की जरूरत समझी। उनका विचार था कि भारत के स्वतंत्रता के मुद्दे को अंतर्राष्ट्रीय पटल पर रखा जाये ताकि विश्वीय जनमत की सहायता और सहयोग प्राप्त हो सके। दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा था कि भारतीय सेना की मदद से एक सैनिक क्रांति के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद को समाप्त करना था। अन्य देशों के क्रांतिकारियों से मिलकर एवम् एशिया और यूरोप के देशों से भी हरसम्भव सहयोग प्राप्त करने का निश्चय किया। इस तरह से भारत के क्रांतिकारी कई ऐसे देशों में भेजे गये जहाँ पर ब्रिटिश विरोधी शक्तियों का शासन था। आपसी सहयोग और सामंजस्य के द्वारा ही सहयोग प्राप्त किया जा सकता था। पाश्चात्य जगत् की राजनीति में तेजी से बदलाव हो रहे थे और आपसी तनाव की स्थितियाँ भी बन रही थी।[42] जर्मनी और ब्रिटेन में आपसी स्थिति तनाव पूर्ण हो चुकी थी और युद्ध की प्रबल

[38] *होम (डिपार्टमेंट), पॉलिटिक्ल ए,* अगस्त 1913, सं॰ 1–3

[39] *उपर्युक्त।*

[40] *उपर्युक्त।*

[41] *होम (डिपार्टमेंट), पॉलिटिक्ल ए,* अगस्त 1913, सं॰ 1–3

[42] *उपर्युक्त।*

सम्भावना होने लगी थी। भारतीय क्रांतिकारी ऐसी स्थिति का लाभ लेना चाहते थे और उनको लगा कि इस समय भारत में भी एक क्रांति की सम्भावना हो सकती थी।[43]

भारतीयों की योजना थी कि किसी तरह जापान के साथ सन्धि करके एक जहाजी बेड़ा हिन्द महासागर को भेजा जाए। इसके पीछे यह रणनीति थी कि इससे ब्रिटिश यूरोप में भारत की सेना भेजने की स्थिति में नहीं होगा। उनका विश्वास था कि अगर यह योजना कारगर हो गई तो भारतीय सरकार इस तरह यूरोप से एकदम कट जायेगी। इससे उसे दोनों जगह नुक्सान होने का खतरा तो था ही अपितु इससे उसकी स्थिति काफी कमजोर हो सकती थी और अवसर का लाभ भी मिल सकता था।[44] इस प्रकार के समस्त घटनाचक्र की जानकारी ब्रिटिश गुप्तचर को मिल चुकी थी। उनको यह भी पता था कि पेरिस में भारतीयों के साथ उनके केन्द्र में जापानी आते रहते थे और मैडम कामा के साथ उनके राजनीतिक सम्बन्ध भी बन चुके थे। आपसी वार्तालाप से यह तय हो गया कि इस तरह एक–दूसरे की सहायता करने का यह काफी उपयुक्त अवसर था। बस एक ही बाधा था कि किस तरह भारतीय सेना के साथ गुप्त सम्पर्क स्थापित किया जाये क्योंकि बिना सैन्य–सहयोग के उनकी योजना को सफलता नहीं मिलेगी। इन भारतीय क्रांतिकारियों ने काफी सूझबूझ प्रदर्शित की और अनेक तरह की योजनाओं को बनाने में सक्रिय रहे।[45]

इससे प्रतीत होता है कि पेरिस केन्द्र की रणनीति एवम् कूटनीति में कितनी दुर्दिशता थी। आपसी तालमेल किस तरह से बराबर बना रहा। पेरिस के अतिरिक्त अन्य केन्द्रों जैसे बर्लिन, टोक्यो, सेन–फ्रांसिसको, वैनकूवर आदि को भी आर्थिक सहायता भेजी जाती रही। वैनकूवर शहर से प्रकाशित समाचार–पत्र 'फ्री हिन्दूस्तान' को भी हर सम्भव सहायता दी जाती थी।[46] इसके प्रकाशन के लिए कई बार आर्थिक सहायता भेजी जाती रही। पेरिस से वी॰वी॰एस॰ अय्यर को भी आर्थिक सहायता दी गई थी जब वह भारत में आता जाता था। भारत के प्रमुख केन्द्रों में पांडिचेरी का भी था जो बाह्य सहायता के द्वारा चलाया जाता था। इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने विदेशों से बड़ी ही बुद्धिमत्तापूर्वक सम्बन्ध स्थापित करके सभी केन्द्रों की सहायता की जाती थी।[47]

इसी समय आचार्य और मुहम्मद बरकातुल्ला खाँ को कुस्तुनतुनिया, मक्का और करबला में भेजने का निर्णय लिया जिससे वहाँ पर मुस्लिमों को अंग्रेजों के विरूद्ध जेहाद के लिए तैयार किया जा सके। तुर्की के मुसलमानों के साथ–साथ भारतीय हज यात्रियों को भी इस योजना में शामिल किया गया। सभी धार्मिक केन्दों में इस तरह का वातावरण तैयार किया गया ताकि जेहादी भावना का तेजी से विकास हो सके।[48]

मुहम्मद बरकातुल्ला खाँ एक मुसलमान होने के साथ–साथ विद्वान् व्यक्ति भी था। टोक्यों विश्वविद्यालय में हिन्दुस्तानी भाषा का प्रोफेसर था और उसने वहाँ से 'इस्लामिक फ्रेटरनिटी' नामक आचार्य के साथ खाँ ने अन्य साथियों के साथ मिलकर मक्का से 'अल इस्लाम' नाम का समाचार–पत्र भी शुरू किया गया। आचार्य की बुद्धिमत्ता के कारण ये सब सम्भव हुआ। जो भी भारतीय मुसलमान

[43] *फॉरेन (डिपार्टमेंट) जनरल, कांफिडेंशियल बी,* 1911, सं॰ 62
[44] *फॉरेन (डिपार्टमेंट) जनरल, कांफिडेंशियल बी,* 1911, सं॰ 62
[45] *होम (डिपार्टमेंट), पॉलिटिक्ल बी,* फरवरी, 1912, सं॰ 65–68
[46] *उपर्युक्त।*
[47] *होम (डिपार्टमेंट), पॉलिटिक्ल ए,* अगस्त, 1913, सं॰ 1–3
[48] *उपर्युक्त, पॉलिटिक्ल बी,* फरवरी, 1912, सं॰ 65–68

यहाँ पर आते थे उनको जेहाद के नारे के साथ ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों को इन क्षेत्रों में बढ़ाना काफी महत्वपूर्ण समझा गया।[49]

यहाँ पर यह बताना अति आवश्यक होगा कि जैसे ही प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ तो उसी दौरान मध्य एशिया में ऐसे अनेक केन्द्र बन चुके थे। इनके केन्द्रों के संचालन में जर्मनी, जापान ने भी सहयोग एवम् आर्थिक सहायता देने का वायदा किया था। जर्मनी ने काफी सक्रियता दिखाई और उसके विदेशी विभाग ने ईरान, तुर्की और अफ्गानिस्तान में अनेक स्थानों पर ब्रिटिश–विरोधी गतिविधियों के केन्द्र बनाये ताकि मुस्लिम जगत् की सहायता ली जा सके। जर्मनी के विदेशी विभाग का यह तर्क था कि यदि मध्य एशिया के क्षेत्रों में ब्रिटिश–विरोधी केन्द्र स्थापित होंगे तो तभी उनकी गतिविधियों को तेजी के साथ भारत के उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत तक बढ़ाना आसान होगा। एक अन्य महत्वपूर्ण विकास भारतीयों द्वारा यह किया गया था कि बर्लिन में 'इंडियन इंडिपैन्डस कमेटी' की स्थापना हुई।[50]

जर्मनी सरकार द्वारा स्थापित सहायता से सभी संगठन भी सही समय पर तालमेल के साथ आगे कार्यवाही करने से नहीं चुकेंगे। 1913 में हरदयाल आदि ने गदर पार्टी की स्थापना के बाद तो तुर्की सरकार से सहायता प्राप्त करने का अवसर दिखाई दिया। उन्होंने कुस्तुनतुनिया में कुछ भारतीय युवक भेजें। भारतीय क्रांतिकारियों का यह दृढ़ मत था कि इन क्षेत्रों में सभी आपस में मिलकर ब्रिटिश विरोधी वातावरण स्थापित करना काफी महत्वपूर्ण होगा। जर्मनी और तुर्की सरकार के सहयोग के द्वारा अफ्गानिस्तान की दिशा से भारत पर आक्रमण करना लाभकारी सिद्ध होगा।[51]

आचार्य और अन्य क्रांतिकारियों को यूरोप की बदलती हुई स्थिति में उपर्युक्त अवसर नजर आ रहा था। इसके साथ उनको यह भी ज्ञात था कि पेरिस एवम् यूरोप के अनेक क्षेत्र उनके लिए ठीक नहीं होंगे। श्यामजी कृष्णवर्मा को इस बात का आभास था अतः वह पेरिस छोड़कर जिनेवा में चला गया। 'इंडियन सोश्योलॉजिस्ट' नामक पत्र को उसने कुछ समय के लिए बंद कर दिया।[52] वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय को जर्मनी जाना उपयुक्त लगा क्योंकि वह अपनी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गतिविधियों को प्रचारित–प्रसारित करने के लिए तत्पर था। स्थिति ऐसी बनती चली गई कि अनेक क्रांतिकारियों ने यूरोप के कई देशों में जाना उपयुक्त समझा। ऐसे वातावरण को देखते हुए मैडम कामा और सरदार सिंह राणा ने पेरिस में ही रहना ठीक समझा। युद्ध की परिस्थितियों में काफी बदलाव आया। सम्भवतः उनको ऐसी आशा नहीं थी कि युद्ध की स्थिति में फ्रांस की सरकार का दृष्टिकोण उनके प्रति इस तरह से बदल जाएगा। वास्तव में स्थिति बड़ी ही विचित्र रूप से ले रही थी।[53]

जैसा कि पहले कहा गया है कि आचार्य आदि अवसर से हरसम्भव लाभ उठाना चाहते थे। यह उनके लिए अति आवश्यक भी था। उनको ऐसा लग रहा था कि वे अनेक देश से सैन्य–सामग्री एकत्रित करके भारत में भेज सकते थे। इसकी सम्भावनाएं तलाशी गई। चन्द्रकांत चक्रवर्ती को अमेरिका से बुलाया गया ताकि वह जर्मनी जाकर वहाँ के अधिकारियों से बातचीत कर सके। बर्लिन कमेटी को जर्मनी सरकार ने पूर्णतः आवश्वस्त किया कि भारतीय क्रांतिकारियों को हरसम्भव सहायता दी जायेगी। इसके लिए 60,000 पौण्ड की आर्थिक सहायता की पेशकश भी की थी। जर्मनी की माँग थी भारत

[49] *उपर्युक्त।*

[50] *होम (डिपार्टमेंट), पॉलिटिक्ल बी,* फरवरी, 1919, सं॰ 185

[51] *उपर्युक्त।*

[52] *होम (डिपार्टमेंट), पॉलिटिक्ल बी,* दिसम्बर, 1914, सं॰ 227–29

[53] *उपर्युक्त।*

व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने होंगे और भारतीय इंजिनियरों को उनके देश में अनेक कार्यों की जिम्मेदारी दी जायेगी।[54]

आपसी समझौते पर दोनों पक्षों ने हस्ताक्षर किये। चक्रवर्ती ने इसका वर्णन अपनी पुस्तक में किया है– "जर्मनी ही नहीं बल्कि उसके सहयोगी राष्ट्र जैसे आस्ट्रिया, तुर्की, बुल्गारिया, आदि ने भी भरोसा दिलाया कि उनकी मदद की जायेगी। इसके बदले में भारतीय ब्रिटेन, फ्रांस और रूस से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखेंगे। सहयोग देने के लिए कुछ अन्य देशों ने जैसे मैक्सिकों, वेनेजुएला, ग्वाटेमाला ने भी हमें सहायता का वचन दिया और चीन एवम् जापान के साथ भी सार्थक बातचीत हुई। अगर घटनाओं का दौर हमारे पक्ष में रहा तो हम भारत के कुछ भाग को अवश्य मुक्त करा लेंगे।[55] इससे प्रतीत होता है कि वे हर तरह की रणनीति और सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर सही अवसर की तलाश में थे ताकि स्थिति से लाभ प्राप्त हो सके।

आचार्य और अन्य भारतीय क्रांतिकारी विश्वास करते थे कि जब तक क्रांतिकारी आंदोलन के दायरे को व्यापक स्तर तक नहीं ले जाया जायेगा, तब तक उनके इरादे सफल नहीं होंगे। उन्होंने बड़े ही गहनता के साथ चिंतन किया कि अपने अभियान को और आगे बढ़ाया जाये और मैक्सिकों, बटैविया, चीन, जापान, भारत आदि स्थानों पर सम्भावनाएँ तलाशी जाए।[56] ब्रिटिश गुप्तचर रिपोर्ट यह दर्शाती है कि अमेरिका में भी अनेक भारतीय ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों में लगे हुए थे परन्तु अमेरिकी सरकार ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। ब्रिटिश सरकार ने अमेरिकी सरकार से प्रार्थना की कि ऐसी घड़ी में ब्रिटेन का साथ दे और खून की लाज रखे, जैसा कि सैन–फ्रांसिस्को के एक अखबार के द्वारा इस तरह के गुप्त संदेश मिलते हैं। अनेक अमेरिकनों की भर्ती करके उनको भारत भेजने की तैयारी की जा रही थी। जर्मनी सरकार ने भारतीय क्रांतिकारियों को धन देने का वायदा किया था कि वे अमेरिका से हथियार खरीदकर भारत में भेजेंगे।[57]

जब भी भारतीयों को बाह्य देशों से धन या सैन्य सामग्री प्राप्त होने के आश्वासन मिलते थे तो उस समय वे अपनी गतिविधियों को बढ़ाने में अग्रणी रहते थे।[58] इसमें कोई संदेह नहीं कि वे चारों तरफ से सहायता की उम्मीद रखते थे लेकिन कई बार मायूस भी हो जाते थे। यह भी मानते थे कि देश में इसी तरह की योजना बनाई जाये लेकिन स्थिति कई बार अस्पष्ट सी दिखाई दी। हालांकि भारतीयों के लिए यह अवसर बहुत ही महत्वपूर्ण था। उनकी कई योजनायें थी जिनके वे पक्षधर थे। सभी गतिविधियों में तालमेल की जरूरत थी विदेशी गतिविधियों के साथ–साथ देश में भी समयानुसार योजना बनाई गई।[59]

रासबिहारी बोस ने देश में स्थिति का जायजा लिया कई स्थानों पर जाकर उसने स्थिति देखी। वह भी चाहता था कि सभी कुछ गुप्त रूप से किया जाये। उस लार्ड हार्डिंग पर बम फैकने के लिए जिम्मेदार माना गया था। पुलिस उसे गिरफ्तार करने के लिए अनेक स्थानों पर खोज रही थी। देश के अनेक क्षेत्रों में उसने गुप्त रूप से महत्वपूर्ण केन्द्र स्थापित किये ताकि क्रांतिकारी गतिविधियों के द्वारा

---

[54] चक्रवर्ती, सी॰, *न्यू इंडिया* (कलकत्ता, 1935), पृ॰ 25

[55] चक्रवर्ती, सी॰, *न्यू इंडिया* (कलकत्ता, 1935), पृ॰ 26।

[56] *उपर्युक्त।*

[57] चक्रवर्ती, सी॰, *पूर्वोक्त,* पृ॰ 26

[58] *सैडिसन कमेटी रिपोर्ट,* 1918, पृ॰ 153

[59] *उपर्युक्त।*

उसकी योजना सफल हो सके। उसने राजपूताना, पंजाब, दिल्ली, बंगाल आदि के क्षेत्रों का दौरा किया ताकि आपसी सामंजस्य स्थापित किया जा सके।[60] विष्णु गणेश पिंगले को बताया गया कि अमेरिका से बड़ी मात्रा में भारत में सैन्य सामग्री के आने की पूरी–पूरी सम्भावना थी। बोस का मानना था कि यह उपयुक्त समय होगा जब भारतीय क्रांतिकारी सेना के साथ–साथ ब्रिटिश को टक्कर देंगे। इसके लिए बोस ने कई क्षेत्रों में जाकर सैन्य रेजिमेंटों से सम्पर्क बनाया।[61]

कई भारतीय क्रांतिकारियों जैसे विष्णुगणेश पिंगले ने मेरठ में, सचीन्द्रनाथ सान्याल बनारस में, करतार सिंह सराभा ने पंजाब में और नलिनी मुखर्जी को जबलपुर भेजा गया ताकि वहाँ पर सैन्य छावनियों में बगावत करवाने की योजना बनाई जा सके। यह वास्तव में 1857 की क्रांति के समय का वातावरण सा बना। अतः इसे काफी उपयुक्त अवसर माना गया।[62] सभी क्षेत्रों में जाकर तालमेल बनाया गया और 21 फरवरी 1915 का दिन ब्रिटिश शासकों के विरूद्ध बगावत का निश्चय किया गया। बड़ी ही सूझबूझ के साथ कार्यक्रमानुसार तैयारी की गई, बम तैयार किये गए। सैन्य सामग्री एकत्रित की गई, फहराने के लिए झंडे बनाये गये। सबसे महत्वपूर्ण था कि युद्ध की घोषणा करना सरकारी संचार एवम् यातायात के साधनों– रेलवे और टेलिफोन को क्षति–ग्रस्त करने के लिए कुछ ऐसे यन्त्र मंगाये गये जिससे ये कार्य–सम्पन्न न हो सके।[63]

बोस ने बड़ी ही तन्मयता के साथ सभी केन्द्र के साथ तालमेल बनाकर बस क्रान्ति की घोषणा करना ही शेष था।[64] दुर्भाग्यवश या डर के कारण एक पुलिस के सिपाही ने, जो रासबिहारी बोस के गहन सम्पर्क में था, ने बनी बनाई रणनीति का ब्रिटिश अधिकारियों के सामने खुलासा कर दिया। क्रांतिकारियों के इसका बहुत बड़ा सदमा पहुँचा और जो योजना बनाने में काफी समय लगा था वह एकदम असफल हो गई। सरकार का बस अब एक ही ध्येय था कि ऐसे सभी को गिरफ्तार किया जाये जो उन क्रांतिकारी गतिविधियों में लगे हुए थे। इस क्रांति के सबसे बड़े नेता रासबिहारी बोस को गिरफ्तार करने का बड़ा अभियान चलाया, लेकिन वे देश छोड़कर जापान चले गये, क्योंकि वे वहाँ पर सुरक्षित रह सकते थे।[65]

क्रान्ति की योजना का असफल हो जाना वास्तव में राष्ट्रीय आंदोलन को एक काफी बड़ा झटका था। जब भारतीय क्रांतिकारियों को विदेशों में इस घटना का समाचार मिला तो वे काफी निराश हुए लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान फ्रांस में भारतीयों के सामने कई समस्याएँ आई। युद्ध के कारण समस्त यूरोप में अशान्ति का वातावरण बन गया था।[66] यूरोप के सौहार्दपूर्ण वातावरण में ही वे अपनी साहित्यिक एवम् अन्य गतिविधियों को आगे बढ़ा सकते थे। ब्रिटिश सरकार ने विदेशी सरकारों पर निरन्तर दबाव बनाकर स्थिति को पूरी तरह से बदल दिया गया। फ्रांस की सरकार पर भी ब्रिटेन ने दबाव बनाये रखा और भारतीय क्रांतिकारियों को फ्रांस से बाहर करने पर जोर देती रही। स्थिति को देखते हुए काफी क्रान्तिकारी फ्रांस छोड़कर जा चुके थे। अब तो मैडम कामा

---

[60] कर, *वही,* पृ॰ 374–75

[61] कर, *वही,* पृ॰ 375–80

[62] *उपर्युक्त।*

[63] *सैडिसन कमेटी रिपोर्ट,* 1918, पृ॰ 154

[64] *होम (डिपार्टमेंट), पॉलिटिक्ल बी,* दिसम्बर, 1915, सं॰ 709–11

[65] *होम (डिपार्टमेंट), पॉलिटिक्ल बी,* दिसम्बर, 1915, सं॰ 709–11

[66] *उपर्युक्त,* अगस्त 1915, सं॰ 552–56; सितम्बर 1915, सं॰ 145–148; फरवरी 1916, सं॰ 515–18

और सरदारसिंहजी राणा ही बाकी बचे थे।[67] ब्रिटिश सरकार ने फ्रांस की सरकार से याचना की कि उन दोनों को उन्हें सौंपे फ्रांस के समाजवादियों ने सरकार पर दबाव बनाया कि उनके विरूद्ध कोई कार्यवाही न हो अतः ऐसी स्थिति में यह सम्भव नहीं था।[68] आचार्य को यह मालूम था कि ऐसी स्थिति में फ्रांस से बाहर रहना ही बेहतर होगा। उसे जहाँ–जहाँ भी भेजा गया और जो भी जिम्मेदारियाँ दी गई, उसने बड़ी ही ईमानदारी से निभाया। जब तक वह विदेशों में रहा तब तक अपने साथियों के साथ मिलकर कार्य करता रहा क्योंकि उन सबके लिए देश की स्वतंत्रता सबसे महत्वपूर्ण थी। जब देश में उनकी दाल नहीं गली तो विदेशों में जाकर बाह्य दबाव और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति में अंत तक लगे रहे। यह उनकी महानता को दर्शाती है।

[67] *उपर्युक्त।*

[68] *उपर्युक्त,* फरवरी, 1916, सं॰ 145–148